''जैनशासन-जयकारा''

श्री पल्लीवाल जैन इतिहास

*** देवलोक से दिव्य सानिध्य ***

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

*** मार्गदर्शन ***

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

*** संपादक ***

भूषण शाह

*** प्रकाशक/प्राप्ति स्थान ***

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061
मो. 09601529519, 9429810625
E-mail -shahbhushan99@gmail.com

मूल्य - 100/- रुपये

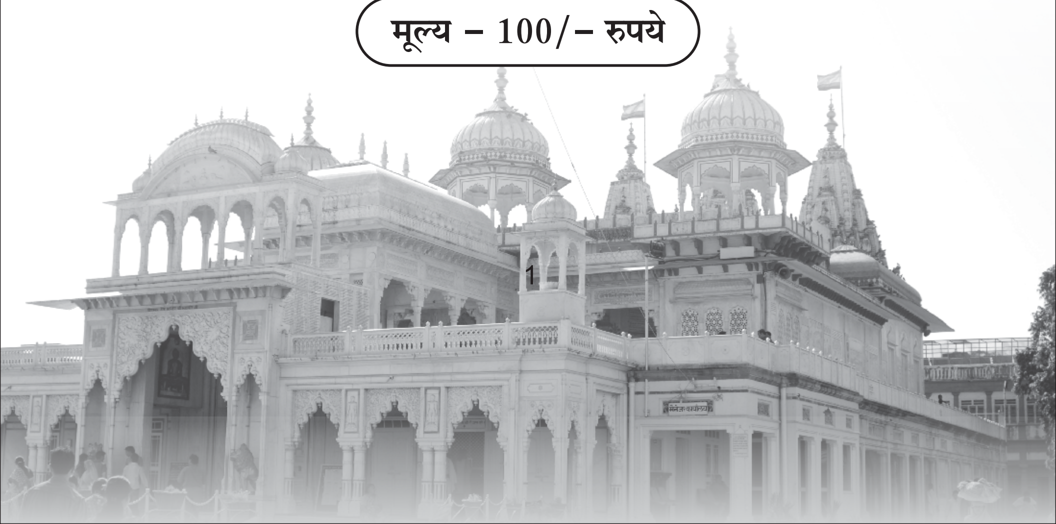

श्री पल्लीवाल जैन इतिहास

© लेखक एवं प्रकाशक
✻ प्रतियाँ : 1000
✻ प्रकाशन वर्ष : वि. सं. 2073, ई. सं. 2017
✻ मूल्य : 100 ₹
✻ न्याय क्षेत्र : अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

'मिशन जैनत्व जागरण' के सभी केन्द्र

अहमदाबाद
101, शान्तम् एपार्ट.
हरिदास पार्क,
सेटेलाइट रोड,
अहमदाबाद

जयपुर (राज.)
आकाश जैन
ए/133, नित्यानंद नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर

नाशिक (महा.)
आनंद नागशेठिया
641, महाशोबा लेन
रविवार पेठ,
नाशिक (महा.)

आग्रा (उ.प्र.)
सचिन जैन
डी-19, अलका कुंज
खावेरी फेझ-2
कमलानगर - आग्रा

Chennai
Komal Shah
B-13,kent apts,
26 Ritherdon rd, Vepery,
Chennai - 600007

मुंबई
हेरत मणियार
ए/11 , ओम जोशी अपार्ट
लल्लुभाई पार्क रोड,
ऐंजललेंड स्कूल के सामने
अंधेरी (वेस्ट) मुंबई

भीलवाड़ा (राज.)
सुनिल जैन (बालड़)
सुपार्श्व गृह जैन मंदिर के पास
जमना विहार-भीलवाड़ा

Bangalore
Premlataji Chauhan
425, 2nd Floor,
7th B Main, 4th Block
Jaynagar, **Bangalore**

लुधियाणा
अभिषेक जैन,
शान्ति निटवेर्स
पुराना बाजार
लुधियाणा (पंजाब)

उदयपुर (राज.)
अरुण कुमार बडाला
अध्यक्ष अखिल भारतीय
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
युवक महासंघ उदयपुर शहर
427-बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल,
उदयपुर-313001 (राज.)

✻ प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भदवंतों को पत्र प्राप्त होने पर भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। ✻ आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। ✻ आप हमें Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jaineliabrary.org. पर। ✻ पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। ✻ पोस्ट से या कुरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगावा सकते हैं।

✻ मुद्रक : ममता क्रियेशन, मुंबई (77384 08740)

ग्रंथ समर्पितम्....

पल्लीवाल जाति में जैनत्व की सुवास
फैलाने वाले,
समाज के सार्थवाह, प्राणीमित्र
कुमारपालभाई. वी. शाह
को प्रस्तुत ग्रंथ

सादर समर्पितम्....

–भूषण शाह

अनुक्रमणिका

क्र.		पृष्ठ.
	प्रस्तावना...	6
1.	जैन जातियों एवं वंशो की स्थापना...	8
2.	हृदय की बात...	10
3.	पल्लीवाल जाति...	11
4.	पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति...	14
5.	पाली और पल्लीवाल...	20
6.	पल्लीवाल जाति में जैन धर्म...	25
7.	पल्लीवाल श्वेतांबर मूर्तिपूजक ही हैं...	26
8.	चौरासी न्यात (जाति)...	31
9.	पल्लीवाल जाति द्वारा निर्मित जैन मंदिर	36

पल्लीवाल जाति में धर्म प्रचार करने वाले श्वेतांबर जैन साधु-साध्वीजी

प.पू. आ. भ. न्यायसूरिजी म.सा.

(आ. वल्लभ सू. म. समु.-तपागच्छ)

प.पू. पं. श्री भुवनसुंदरविजयजी म.सा.

प.पू. ग. धैर्यसुंदरविजयजी म.सा.

(आ. भुवनभानु सू. म. समु.-तपागच्छ)

प.पू. ग. श्री मणिरत्नसागरजी म.सा.

(मूल पल्लीवाल, खरत्तरगच्छ)

प.पू. सा. श्री देवेन्द्रश्रीजी म.सा.

(आ. वल्लभ सू. म. समु.-तपागच्छ)

प.पू. सा. श्री. मनोहरश्रीजी म.सा. (खरत्तरगच्छ)

प.पू. सा. श्री शुभोदयाश्रीजी म.सा.

(आ. लब्धि सू. म. समु.-तपागच्छ)

(35-35 साल इस क्षेत्र में चर्तुमास किये)

प.पू. साध्वी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी

प.पू. साध्वी श्री सुदर्शनाश्रीजी

(त्रिस्तुतिक संप्रदाय)

एवं सुश्रावक शासनरत्न

कुमारपालभाई वी. शाह

(कलिकुंड-धोलका)

॥ ॐ ऐँ नमः॥

प्रस्तावना...

प्रभु वीर का धर्म 2550 वर्ष पूर्व किसी समाज की सीमाओं में सिमित नहीं था। जो पालन करे, उसका धर्म। इस व्याख्या को मुख्य बनाकर क्षत्रिय जैन धर्म अपनाते थे तो ब्राह्मण भी उसका स्वीकार करने में कहीं पीछे नहीं थे। बनिये भी जैन होते थे तो हरिकेशी मुनि चाण्डाल कुल में जन्म पाने पर भी जैनी दीक्षा ग्रहण कर सकते थे।

प्रभु वीर के निर्वाण के कुछ साल बाद पू. आचार्य भगवंत श्री रत्नप्रभ सूरीश्वरजी म. ने ओसवाल वंश की स्थापना की उसके बाद बड़े-बड़े प्रभावक आचार्य भगवंतोंने बड़े-बड़े एक गोत्र के या अनेक गोत्र के (जिनमें परस्पर सामाजिक व्यवहार था) लोगों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। तब से धर्म के साथ समाज का संयोग हुआ। पू. 9½ पूर्वधर आचार्य भगवंत श्री आर्यरक्षितसूरि महाराजा ने श्रावकों के कुल को नियत किया। तब से विशेष रूप से समाज के साथ धर्म की पहचान जुड़ गई।

सन् 1971 में पू. आचार्य भगवंत श्री विक्रमसूरीश्वरजी म. छ'रि पालक संघ लेकर सम्मेतशिखर जा रहे थे तब इस पल्लीवाल क्षेत्र से गुजरे। बहुत सारे पल्लीवालों ने शायद प्रथम बार ही किसी जैन साधु-साध्वियों के दर्शन किये। हम सोच सकते है कि जिस पल्लीवाल जैन का इतिहास इतना भव्य था, वह न तो साधु भगवंतों एवं धर्म को जानते थे और न ही साधु भगवंत और श्रावक उनको जैन धर्मी के रूप में जानते थे। जैन धर्म के कुछ संप्रदायों का इस पल्लीवाल की धरा पर विचरण होने पर भी इन लोगों ने यहाँ के धर्म प्रेमियों को धर्म से न जोड़ते हुए सिर्फ अपने संप्रदाय से जोड़ने का काम किया था। जिस ज्ञाति में पेथड़शाह मंत्री जैसे सुकृतसागर श्रावक हुए थे, जिस ज्ञाति में जोधराजजी दिवान जैसे सत्ताधीश, बलवान और धर्मप्रेमी श्रावक हुए थे ऐसी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पल्लीवाल ज्ञाति अन्य संप्रदायों में कैसे प्रविष्ट हो गई? हकीकत कड़वी है लेकिन सच्ची है। श्वेतांबर मूर्तिपूजक संप्रदाय के साधु-साध्वियों का विचरण कुछ दशकों (या शतकों) तक न के बराबर रहा और स्वभाव से अत्यंत सरल ऐसी पल्लीवाल जाति के लोगों की सरलता का तथा तथाकथित संप्रदायों ने बहुत दुर्पयोग किया।

सन् 1971 में इस क्षेत्र से गुजरने के बाद पू. आचार्य भगवंत् श्री विक्रम सूरीश्वरजी म. ने अपने साध्वीजी भगवंत् श्री सुभोदयश्रीजी म. को इस क्षेत्र में

विचरण करने की आज्ञा की। वह अतिशय विकट समय था। धर्म की जानकारी से लोग शून्य थे इतना ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी लोगों का जीवनस्तर काफी पीछे था। गुजरात में बढ़े हुए और गुजरात में विचरण करने वाले साधु-साध्वी को यहाँ हर तरह की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती थी। जिनशासन रत्न कुमारपाल भाई ने मुंबई और गुजरात के बहुत सारे दानवीर श्रेष्ठियों को पल्लीवाल क्षेत्र दिखाकर जगह-जगह पर जिनालय और उपाश्रय बंधवाये। बीच में 2 साल के लिए पू. पंन्यास श्री भुवनसुंदर विजयजी म.सा. भी इस क्षेत्र में विचरण करके गये। आज हम भी यहाँ पर विचरण कर रहे हैं, लेकिन हम तो बने बनाये (तैयार) रास्ते पर चल रहे हैं जबकि पूर्व में विचरण करने वाले साधु-साध्वीजी भगवंत् एवं श्री कुमारपालभाई ने रास्ता तैयार करने का काम किया है।

करिबन एक साल रहने के बाद यह लगता है कि यदि निरंतर 4-5 साल के लिए गुरु भगवंतों का विचरण यहाँ होता रहे तो अलग-अलग संप्रदायों द्वारा फैलाये हुए कुतर्कों के जाल का पर्दा फाश होगा। जीवन और बौद्धिक स्तर में कुछ सुधार आया है, नई पीढ़ी धर्म को समझने के लिए लालायित हैं और अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा भौतिकवाद और संस्कारों का अधःपतन यहीं कुछ सीमित होने के कारण धर्म से उन्हें जोड़ना सरल है।

प्रस्तुत पुस्तक पल्लीवालों के गरिमापूर्ण इतिहास से हमें जोड़ रही है। संक्षिप्त स्वरूप होने पर भी पल्लीवालों का इतिहास प्रगट करना बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सुश्रावक भूषण 'मिशन जैनत्व जागरण' चलाकर प्रभु शासन की बहुत ही सुंदर सेवा कर रहे हैं। जब भी आप से मिलना होता था तब जैन शासन की सुलगती समस्याओं के बारे में घंटों तक बातचीत होती थी और समाधान के लिए कुछ न कुछ कर गुजरने की तत्परता हर बार दिखाई देती है। आम तौर पर जब पूरी युवा पीढ़ी पैसे के पीछे दौड़ रही है, तब ऐसे शासनसेवक युवाओं के दर्शन बड़ा सौभाग्य है। अनुरोध करुंगा भूषणजी को, इस तरह और जैन समाज के भी इतिहास को प्रकट करो, पल्लीवाल के पेथड़शा, नेमड़, कवि धनपाल इत्यादि का इतिहास भी उजागर करो। हमारा आशीर्वाद सदैव आपके साथ है।

दः धैर्यसुन्दर विजय का धर्मलाभ

(कार्तिक कृष्ण तृतीया, हिण्डोन सिटी)

जैन जातियों एवं वंशों की स्थापना

यह तो सुनिश्चित है कि भगवान महावीर के समय में जैन जातियों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। सभी जातियों में लोग जैन धर्मानुयायी थे। जैन आगम उत्तराध्ययन सूत्र से स्पष्ट है कि भगवान महावीर के समय जो वैदिक धर्म में जन्म से जाति का संबंध माना जाता था वह जैन धर्म को मान्य नहीं था। गुणों से ही जाति की विशेषता जैन धर्म को मान्य थी। कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र होते हैं। महाभारत और बौद्ध ग्रंथ भी इसका समर्थन करते हैं।

मध्यकाल में जैनाचार्यों ने बहुत सी जाति वालों को जैन धर्म का प्रतिबोध दिया तो उनमें जैन संस्कार वंश परंपरा से चलते रहें इसके लिए उनको स्वतंत्र जाति या वंश के रूप में प्रसिद्ध किया गया, क्योंकि वैदिक धर्मानुयायी प्रायः समस्त वर्णों वाले माँसाहारी थे, पशुओं का बलिदान करते थे और बहुत से ऐसे अभक्ष्य भक्षण आदि के संस्कार उनमें रूढ़ थे और जो जैन धर्म के सर्वदा विपरीत थे। इसलिए जैनों का जातिगत संगठन करना आवश्यक हो गया । उनका नामकरण प्रायः उनके निवास स्थान पर ही आधारित था। जैसा कि 12 बारह जाति संबंधों पद्यों से स्पष्ट है –

सिरि सिरिमाल उएसा पल्ली तहाय मेडतेः

विश्वेरा डिंडूया षडूया तह नराण उरा।।1।।

हरिसउरा जाइल्ला पुक्खर तह डिंडूयडाः

खडिल्लवाल अद्धं, वारस जाइ अहीयाड।।2।।

अर्थात् श्रीमाल, ओसवाल, पल्लीवाल, मेडतवाल, डिडू, विश्वेरा, खंडेलवाल, नारायणा, हर्षोरा, जयसवाल, पुष्करा, डिडूयडा और आधे खण्डेलवाल ये साढ़े बारह जातियाँ होती है। इन जातियों के नामों से स्पष्ट है कि उनका नामकरण उनके निवास स्थान पर ही आधारित है। अतः पल्लीवाल जाति भी पल्ली या पाली में ही प्रसिद्ध हुई है।

जाति के साथ किसी धर्म विशेष का पूर्णतः संबंध नहीं है जिस प्रकार श्रीमाली ब्राह्मण भी हैं और श्रीमाली जैन भी हैं इसी तरह खंडेलवाल और पल्लीवाल ब्राह्मण और जैन दोनों हैं। ओसवाल पहले सभी जैन थे, फिर राज्याश्रय आदि के कारण

कुछ वैष्णव हो गये, फिर भी अधिक संख्या जैनों की ही है। पल्लीवाल वैश्यों में भी सभी एक ही गच्छ के अनुयायी नहीं थे, यह प्राचीन शिलालेखों और प्रशस्तियों से स्पष्ट है। जिस प्रांत में जिस गच्छ का अधिक प्रभाव रहा था, जिसका जिससे अधिक संपर्क हुआ वे उसी के अनुयायी हो गये। जैन जातियों का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ अंधकार में है, वही स्थिति पल्लीवाल जैन इतिहास की है। प्राप्त प्रमाणों से यथासंभव इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है।।इति।।

हृदय की बात...

उत्तर भारत के जयपुर, आगरा, दिल्ली, अलवर आदि क्षेत्रों में जैन धर्मी पल्लीवाल समाज रहता है। इन क्षेत्रों में अतिप्राचीन जिनमंदिर व जैन धर्म के अवशेष मौजूद हैं। अभी-अभी इन क्षेत्रों के आसपास मेरे गुरुदेव पू. जम्बूविजयजी महाराज की कृपा से 15 के करीब जिनमंदिरों की प्रतिष्ठा हुई। इस प्रतिष्ठा के दौरान मुझे भावना हुई की पल्लीवाल जाति का इतिहास छपवाया जाए... इतिहास के दर्पण में अति मूल्यवान पल्लीवाल समाज का इतिहास क्या है? ये शायद खुद इन क्षेत्रों के लोगों को नहीं पता। स्थानकवासी समुदाय के कई साधु साध्वी यहाँ श्रावकों को मंदिर न जाने व पूजा न करने की प्रतिज्ञा देते हैं। मैंने खुद स्थानकवासी साधु-साध्वी को मंदिर न जाने की प्रतिज्ञा देते देखा है। पल्लीवाल समाज मूलतः श्वेतांबर मूर्तिपूजक ही है व रहेगा। पल्लीवाल क्षेत्र में जागृति लाने का काम पूजनीय साध्वीजी शुभोदयाश्रीजी म.सा. व शासनसिरताज कुमारपालभाई वी. शाह ने किया है। आज इस कार्य को हम सब ज्यादा-से-ज्यादा आगे बढ़ाएँ व साधु साध्वीजी भगवंत इस क्षेत्र में विशेष विचरण करें यह अति आवश्यक है। अगर साधु-साध्वीजी भगवंतों का विचरण नहीं हुआ तो लोग मिथ्यात्वीयों के जाल में फंस जाएँगे व उन्मार्ग का आचरण करने लगेंगे।

पल्लीवाल जैन भाई-बहनों से नम्र निवेदन :

पल्लीवाल क्षेत्रों में जो प्राचीन जिनमंदिर आदि है वे सब आपके ही पूर्वजों ने बनवाए हैं। स्थानकवासी पंथ तो आज का (400 साल पूर्व का) निकला हुआ है।[1] आप अपने पूर्वज व अपनी मूल परंपरा संस्कृति को वफादार रहें, यह अति आवश्यक है। यही मार्ग कल्याणकारी है व जन्म जन्मान्तर में शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, ऋद्धि-सिद्धि का दाता है... और भगवान की मूल परम्परा यही है। अतः महाजनो येन गतः स पन्था के न्याय से मूल मार्ग की आराधना करके शीघ्र मोक्ष प्राप्त करें यही भावना के साथ....

1. देखिए.... 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास, लोकागच्छ और स्थानकवासी, जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा', पुस्तक

पल्लीवाल जाति

इस जाति की उत्पत्ति का मूल स्थान पाली शहर है, जो मारवाड़ प्रांत के अन्तर व्यापार का एक मुख्य नगर था, पर इस जाति में दो तरह के पल्लीवाल हैं। 1. वैश्य पल्लीवाल, 2. ब्राह्मण पल्लीवाल और इस प्रकार नगर के नाम से और भी अनेक जाति हुई थीं, जैसे श्रीमाल नगर से श्रीमाल जाति, खंडेला शहर से खंडेलवाल, महेश्वरी नगरी से महेश्वरी जाति, उपकेशपुर से उपकेश जाति, कोरंट नगर से कोरटवाल जाति और सिरोही नगर से सिरोहिया जाति इत्यादि नगरों के नामों से अनके जातियाँ उत्पन्न हुई थी। इसी प्रकार पाली नगर से पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति हुई है। वैश्यों के साथ ब्राह्मणों का भी संबंध था, कारण ब्राह्मणों की आजीविका वैश्यों पर ही थी, अतः जहाँ यजमान जाते हैं वहाँ उनके गुरु ब्राह्मण भी जाया करते हैं। जैसे श्रीमाल नगर से वैश्य लोग श्रीमाल नगर का त्याग करके उपकेशपुर में जा बसे तो श्रीमाल नगर के ब्राह्मण भी उनके पीछे पीछे चले आये। अतः श्रीमाल नगर से आये हुए वैश्य और ब्राह्मण, श्रीमाल वैश्य और श्रीमाल ब्राह्मण कहलाये। इसी प्रकार पाली के वैश्य और ब्राह्मण पाली के नाम पर पल्लीवाल वैश्य और पल्लीवाल ब्राह्मण कहलाये। जिस समय का मैं, हाल लिख रहा हूँ वह जमाना क्रिया कांड का था और ब्राह्मण लोगों ने ऐसे विधि विधान रच डाले थे कि थोड़ी थोड़ी बातों में क्रिया कांड की आवश्यकता रहती थी और वह क्रिया कांड भी जिसके यजमान होते थे वे ब्राह्मण ही करवाया करते थे। उसमें दूसरा ब्राह्मण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, अतः वे ब्राह्मण अपनी मनमानी करने में स्वतंत्र एवं निरंकुश थे। एक वंशावली में लिखा हुआ मिलता है कि पल्लीवाल वैश्य एक वर्ष में पल्लीवाल ब्राह्मणों को 1400 लीकी और 1400 टके दिया करते थे तथा श्रीमाल वैश्यों को भी इसी प्रकार टैक्स देना पड़ता था। पंचशतीशा-षोडशाधिका अर्थात 516 टका लाग दाया के देने पड़ते हैं। भूदेवों ने ज्यों-ज्यों लाग दाया रुपी टेक्स बढाया त्यों-त्यों यजमानों की अरूचि बढ़ति गई। यही कारण था कि उपकेशपुर के मंत्री बहड ने म्लेच्छों की सेना लाकर श्रीमाली ब्राह्मणों से पीछा छुड़वाया। इतना ही क्यों बल्कि दूसरे ब्राह्मणों का भी जोर जुल्म बहुत कम पड़ गया। क्योंकि ब्राह्मण लोग भी समझ गये कि अधिक करने से श्रीमाली ब्राह्मण की भांति यजमानों का संबंध टूट जायेगा जो कि उन पर ब्राह्मणों की आजीविका का आधार था, अतः पल्लीवालादि ब्राह्मणों का उनके यजमानों के

साथ संबंध ज्यों का त्यों बना रहा। मंत्री बहड की घटना का समय वि. सं. 400 पूर्व का था यही समय पल्लीवाल जाति का समझना चाहिये। खास कर तो जैनाचार्यों का मरुधर भूमि में प्रवेश हुआ और उन्होंने दुर्व्यसन सेवित जनता को जैन धर्म में दीक्षित करना प्रारंभ किया। तब से ही उन स्वार्थ प्रिय ब्राह्मणों के आसन कांपने लग गये थे और उन क्षत्रियों एवं वैश्यों से जैन धर्म स्वीकार करने वाले अलग हो गये तब से ही जातियों की उत्पत्ति होनी प्रारंभ हुई थी। इसका समय विक्रम पूर्व चार सौ वर्षों के आस-पास का था और यह क्रम विक्रम की आठवीं-नौवीं शताब्दी तक चलता ही रहा तथा इन मूल जातियों के अन्दर शाखा प्रतिशाखा तो वट वृक्ष की भांति निकलती ही गई जब इन जातियों का विस्तार सर्वत्र फैल गया तब नये जैन बनाने वालों की अलग अलग जातियाँ नहीं बनाकर पूर्व जातियों में शामिल करते गये। जिसमें भी अधिक उदारता उपकेश वंश की ही थी कि नये जैन बनाकर उपकेश वंश में ही मिलाते गये। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो पालीवाल और पल्लीवाल जाति का गौरव कुछ कम नहीं है। प्राचीन ऐतिहासिक साधनों से पाया जाता है कि पुराने जमाने में इस पाली के फेफावती, मल्हिका, पालिका आदि कई नाम थे और कई नरेशों ने इस स्थान पर राज्य भी किया था। पाली नगर एक समय जैनों का मणिभद्र महावीर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था। इतिहास के मध्यकाल का समय पाली नगरी के लिऐ बहुत महत्त्व का रहा था। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के शिलालेख तथा प्रतिष्ठा कराने वाले जैन श्वेताम्बर आचार्यों के शिलालेख आज भी उपलब्ध है इत्यादि प्रमाणों से पाली की प्राचीनता में किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिलता है।

व्यापार की दृष्टि से देखा जाये तो भारतीय व्यापारिक नगरों में पाली शहर का मुख्य स्थान था। पूर्व जमाने में पाली शहर व्यापार का केन्द्र था। बहुत जत्था बंद माला का निकास, प्रवेश होता था, यह भी केवल एक भारत के लिये ही नहीं पर भारत के अतिरिक्त दूसरे पाश्चात् प्रदेशों के व्यापारियों के साथ पाली शहर के व्यापारियों का बहुत बड़े प्रमाण में व्यापार चलता था। पाली में बड़े बड़े धनाढ़्च व्यापारी बसते थे और उनका व्यापार विदेशों के साथ तथा उनकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ थी। फ्रांस, अरब, अफ्रीका, चीन, जापान, मिस्त्र, तिब्बत वगैरह प्रदेश तो पाली के व्यापारियों के व्यापार के मुख्य प्रदेश माने जाते थे।

जब हम पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रंथों को देखते हैं तो पता चलता है कि पाली के महाजनों की कई स्थानों पर दुकानें थीं और जल एवं थल मार्ग से माल आता जाता था और इस व्यापार में वे बहुत मुनाफा भी कमाते थे। यही कारण था कि ये लोग एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य का व्यय कर डालते थे। इतना ही नहीं, उन लोगों की देश एवं जाति भाइयों के प्रति इतनी वात्सल्यता थी कि पाली में कोई साधर्मिक एवं जाति भाई आकर बसता तो प्रत्येक घर से एक मुद्रिका और एक ईंट अर्पण कर दिया करते थे कि आने वाला सहज में ही लक्षाधिपति बन जाता और यह प्रथा उस समय केवल एक पाली वालों के अन्दर ही नहीं थी पर अन्य नगरों में भी थी जैसे चंद्रावती और उपकेशपुर के उपकेशवंशी, प्राग्वटवंशी, आगरा के अगरवाल, डिडवाना के महेश्वरी आदि कई जातियों में थी कि वे अपने बराबरी के बना लेते थे। करीबन एक सदी पूर्व एक अंग्रेज इतिहास प्रेमी टाडे साहब ने मारवाड़ में पैदल भ्रमण करके पुरातत्त्व की शोध-खोज का कार्य किया था। उनके साथ एक ज्ञानचंदजी नाम के यति रहा करते थे उन्होंने भी इसका हाल लिखा है कि पाली के महाजन बहुत बड़ा उपकार करते थे।

इस उल्लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि मारवाड़ में पाली एक व्यापर का मथक और प्राचीन नगर था। यहाँ पर महाराज संघ एवं व्यापारियों की बड़ी बस्ती थी।

आधार - 1. मारवाड़ का इतिहास, 2. एपीग्राफीका इंडीका, 3. हा! पल्लीवाल श्वेताम्बर मूर्तिपूजक हैं। 4. Rajasthan - History, 5. राजस्थान के जैन तीर्थ

पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति

वर्तमान में जितनी जातियां हैं उनके नाम प्रायः धंधा, स्थान, प्रदेश, पुर-नगर-ग्राम के पीछे पड़े हुए ही अधिक मितले हैं। जिन में वैश्य जातियों के नाम तो प्रायः उक्त प्रकार ही प्रसिद्धि में आये हैं। श्रीमालपुर के श्रीमाली, खंडेला के खंडेलवाल, ओसिया के ओसवाल आदि बारह अथवा तेरह जातियों में प्रायः सर्वनाम ग्राम और प्रांतों की प्रसिद्धि को लेकर ही चलते हैं। पाली से पल्ली जाति की उत्पत्ति मानी जाती है। पाली और पल्लीवाल निबंध में इन दोनों के पारस्परिक संबंध के विषय में यथा प्राप्त एवं यथा संभव लिखा जा चुका है। कुछ विचारक जैन पल्लीवाल जाति और उसमें भी दिगंबर पंडित पल्लीवाल जाति को समक्ष रखकर पाली से पल्लीवाल जाति का निकास अथवा उसकी उत्पत्ति स्वीकार करने की तैयार नहीं है। परंतु वे इसकी उत्पत्ति अन्य जातियों के समान कहाँ से स्वीकार करते हैं? उसका उनके पास कोई उत्तर अथवा आधार नहीं है। ऐसी स्थिति में पाली से ही पल्लीवाल जाति उत्पन्न हुई मानना अधिक समीचीन है। श्वेतांबर ग्रंथों में तो पाली और पल्लीवाल गच्छ एवं जाति के प्रगाढ़ संबंध की दिखाने वाले कई प्रमाण उपलब्ध हैं जो प्रस्तुत इस लघु इतिहास में भी यत्र-तत्र आ गये हैं।

पाली की प्राचीनता के साथ पल्लीवाल जाति की 'पल्लीवाल' नाम से प्रसिद्ध होने की बात समानांतर सिद्ध नहीं की जा सकती। पाली नगर का नाम पाली क्यों पड़ा? आदि बातों को प्रमाणों से सिद्ध करना कठिन है। 'पाली' का एक अर्थ तरल पदार्थ निकालने का, एक बर्तन विशेष जो पली, पला और पल्ली कहलाते हैं। दूसरा अर्थ है - ओढने, बिछाने अथवा अन्न, कपास की गांठ बांधने की चद्दर-पल्ली। तीसरा अर्थ है - पक्ष, चौथा अर्थ है- छोटा ग्राम और पाँचवाँ अर्थ है अनाज नापने का एक प्रकार का पात्र जिसे जालोर, भीनमाल, जसवंतपुरा और सांचोर के प्रांगणों में पाली, पायली कहते हैं। आज भी वहां अन्न इसी पायली-माप से ही मापा जाता है जो मणों में पूरी उतरती है। चार पायली का एक मण। चार मण की एक सी और इसी प्रकार आगे भी माप है। अनुमानतः चार पायली अन्न का तोल लगभग साढ़े पाँच सेर बंगाली बैठता है। यह पाली अथवा पायली माप ही पाली के नाम का कारण बना हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । पाली में और उसके समीपवर्ती भागों में अधिकांश बाजरे की कृषि होने के कारण इस तोल की ख्याति के पीछे 'पाली' नाम वर्तमान् पाली का पड़ गया हो, परंतु यह भी अनुमान ही है। परंतु इस में तनिक सत्यता का आभास होता है। पाली में अन्न प्रचुरता से होता था और उसको पाली अथवा पायली से मापा जाता था अतः पाली से मापने

वाला अथवा पाली रखने वाला कृषक और व्यापारी पल्लीवाला-पालीवाला-पल्लीवाल-पल्लिकीय कहलाता हो और ऐसे पल्लीवालों की अधिक संख्या एवं बस्ती के पीछे वह नगर ही पाली नाम से विद्युति में आया हो। ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव से मैं इन अनुमानों पर बल देकर नहीं कह सकता परंतु पल्ली और पाली नामक माप की नाम साम्यता और पाली में पाली माप का प्राचीन समय से होता रहा प्रचार अवश्य विचारणीय है। जो कुछ हो-चाहे पल्ली- पालीवाल के पीछे नगर का नाम पाली पड़ा हो और चाहे नगर में पाली (माप) का प्रयोग होने से नगर का नाम पाली पड़ा हो और पाली-पल्ली माप का प्रयोग करने वाले कृषक, व्यापारी पल्लीवाल-पालीवाल कहलाये हों। इन अटकलों से कोई विशेष प्रयोजन नहीं। विशेष संभव यही है कि यह छोटा ग्राम हो और पीछे बड़ा नगर बन गया हो।

प्रयोजन मात्र इतना ही है कि पाली से पल्लीवाल जाति का निकास मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है और यह प्रसंग अनेक कविता, दंत कथा, जन श्रुतियों में आता है और प्राचीन इतिहास, पुरातत्व के प्राप्त प्रमाणों पर जब तक कि अन्य स्थल के पक्ष में प्रबल प्रमाण न मिल जाय, पाली ही पल्लीवाल जाति का उत्पत्ति स्थान माना जाना चाहिए।

इसी पाली नगर से पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति का अन्य स्थान अभी तक तो किसी प्राचीन, अर्वाचीन विद्वान ने नहीं सुझाया है। पाली को ही उसका उत्पत्ति स्थान मान लिया गया है। पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल जाति का मूल में प्रतिबोधक और प्रतिबोधित का संबंध रहा है। इस पर भी पल्लीवाल जाति का मूल उत्पत्ति स्थान पाली ही ठहरता है। पल्लीवाल गच्छ विशुद्धतः श्वेतांबर गच्छ है। पीछे से पल्लीवाल भिन्न गच्छ, संप्रदाय, मत अथवा वैष्णव धर्म अनुयायी बन गये हों, तो भी उनके पल्लीवाल नाम के प्रचलन में उससे कोई अंतर नहीं पड़ सकता।

पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति भी अन्य जैन वैश्य जातियों के साथ साथ ही हुई मानी जा सकती है। वैसे तो ओसवाल, पोरवाल और श्रीमाल जातियों की उत्पत्ति संबंधी कुछ उल्लेख भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् प्रथम शताब्दि में ही होना बतलाया है, परंतु पल्लीवाल गच्छ पट्टावलि जो बिकानेर बड़े उपाश्रय के बृहत् ज्ञान भंडार में हस्त लिखित प्राप्त हुई है उनमें 17 वें पाट पर हुए श्री यशोदेवसूरिजी ने वि. सं. 329 वर्ष वैशाख सुदी 5 प्रहलाद प्रतिबोधिता श्री पल्लीवाल गच्छ स्थापना लिखा है। जैन जातियों के अधिकतर जो लेख प्रतिमा, ताम्र पत्र, पुस्तकें प्राप्त हैं वे प्रायः नौंवी और दसवीं शताब्दि और अधिकतर

उत्तरोत्तर शताब्दियों के साथ-साथ संख्या में अधिकाधिक पाये जाते हैं। अतः उनका विश्रुति में आना विक्रम की आठवीं शताब्दि और उनके तदानन्तर माना जाता है। इसी प्रकार पल्लीवाल प्राचीनतम लेख बारहवीं शताब्दि का वि. सं. 1144 पाली में प्राप्त हुआ है। इस पर भी यह कहना ठीक नहीं है कि पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति इसी के समीपवर्ती या इसी शताब्दि में ही हुई हो।

आधुनिक प्रायः समस्त जैन जातियों का उद्भव राजस्थान में हुआ है। राजस्थान से ये फिर व्यक्ति, कुल, संघ के रूप में व्यापार धंधा, राजकीय नियंत्रणों पर और राज्य परिवर्तन, दुष्काल, धर्म संकट एवं अर्थोपार्जन के कारणों पर स्थान परिवर्तित करती रही है और धीरे-धीरे विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक समस्त जैन जातियाँ अपने मूल स्थान से छोटी-बड़ी संख्या में निकलकर कच्छ, काठियावाडा, सौराष्ट्र, गुर्जर, मालवा, मध्यप्रदेश आदि भागों में भी पहुँच गई है। जिसके प्रचुर प्रमाण मूर्ति लेखों से, ग्रंथ प्रशस्तियों से एवं राज्यों के वर्णनों से ज्ञात होते हैं। पल्लीवाल जाति भी अन्य जैन जातियों की भाँति कच्छ, काठियावाड़, सौराष्ट्र और गुर्जर में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दि तक और ग्वालियर, जयपुर, भरतपुर अलवर, उदयपुर, कोटा, करौली, आगरा आदि विभागों के ग्राम, नगरों में विक्रम की चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी पर्यंत कुछ कुछ संख्या में और सोहलवीं एवं सतरहवीं शताब्दि में भारी संख्या में उपरोक्त स्थानों में व्यापार धंधे के पीछे पहुंची और यत्र-तत्र बस गई। इसकी पुष्टि में इस लघु इतिहास में वर्णित पल्लीवाल जातीय बंधुओं द्वारा उक्त स्थानों में विनिर्मित जैन मंदिर ग्रंथ प्रशस्तियाँ और प्रतिष्ठित मूर्तियाँ प्रमाणों के रूप में लिये जा सकते हैं।

पाली से निकलकर ज्यों-ज्यों कुल, व्यक्ति अथवा संघ अलग-अलग प्रांतों में, राज्यों में जा जा कर बसते गये, त्यों त्यों वहाँ के निवासियों के प्रभाव से संपर्क व्यवहार से, मत परिवर्तित करते गये और आज यह जाति जैन धर्म की सभी मत और संप्रदायों में ही विभाजित नहीं, वरण कुछ पल्लीवाल वैश्य वैष्णव भी हैं। जैसा अन्य प्रकरणों से सिद्ध होता है। इस जाति के प्राचीनतम उल्लेख श्वेताम्बरीय हैं और वे श्वेतांबर ग्रंथों ज्ञान भंडारों और मंदिरों में प्राप्त होते हैं।

मूल स्थान से सर्व प्रथम कौन निकला और कब निकला और वह कहाँ जा कर बसा यह बतलाना अत्यंत कठिन है। फिर भी जो कुछ प्राप्त हुआ है वह निम्न है।

यह सुनिश्चत है कि पल्लीवाल ब्राह्मण कुल वहाँ कृषि करते थे। इस प्रकार

उनको राज्य को कोई कर नहीं देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त पल्लीवाल वैश्यों के उपर भी उनके निर्वाह का कुछ भार था ही। राज्य ने ब्राह्मणों से कर लेने पर बल दिया और वैश्यों ने उसकी पूर्ति करना अस्वीकार किया, बल्कि स्वयं की जिम्मेदारी को उलटा घटाना चाहा और इस पर 'सहजरुष्ट' होने वाले स्वभाव के ब्राह्मण अपने सदियों के निवास पाली का एक दम त्याग करके चल पड़े। यह घटना वि. 17 वीं शताब्दि में हुई प्रतीत होती है। पल्लीवाल ब्राह्मण कुलों में पाली का त्याग करके निकल जाने की कथा उनके बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर है। इसी प्रसंग के घटना काल में पल्लीवाल वैश्यों को पाली का त्याग करके चले जाने के लिये विवश होना पड़ा हो और वह यों चले गए हो। पल्लीवाल ब्राह्मण कृषक कुलों ने वैश्य कुलों से सहाय मांगी अथवा वृत्ति में वृद्धि करने को कहा और वैश्य कुलों ने दोनों प्रस्ताव अस्वीकार किया और इससे यह तनाव बढ़ चला हो। इससे भी अधिक वास्तविक कारण यह प्रतीत होता है कि वैश्य कुलों ने अपने उपर चले जाते ब्राह्मण कुलों के आर्थिक भार को कम करना चाहा हो और ब्राह्मण कुलों ने वह स्वीकार न किया हो। ठीक इसी समस्या के निकट में राज्य ने ब्राह्मण कुलों से कृषि योग्य भूमि छीनना प्रारंभ किया हो और वैश्य कुल यह सोचकर कि ब्राह्मण कुलों को उलटा अब और अधिक देना पड़ेगा, न्यून करना दूर रहा। उक्त घटना काल के कुछ ही पूर्व अथवा उसी समय अधिक अथवा संपूर्ण समाज के साथ पाली का त्याग करके निकल चले हों। इस आशय की एक कहानी पल्लीवाल वैश्य कुलों में प्रचलित भी है और वह परिणाम से सत्य भी प्रतीत होती है।

उस समय पाली जैन पल्लीवाल वैश्यों में धनपति साह का प्रमुख होना राय राव की पोथियों में वर्णित किया गया है। यह कहाँ तक प्रमाणिक है इस पर विचार करते हैं तो वह यों सिद्ध होता है कि राय परशादीलाल और मोतीलाल के उत्तराधिकारियों के पास में पल्लीवाल जाति की विवरण पोथियाँ है। उनकी पोथी में श्रेष्ठि तुलाराम ने श्री महावीरजी क्षेत्र के लिये पल्लीवाल जातीय 45 पैतालीस गोत्रों को निमंत्रित कर के यात्रा संघ निकाला था, यह वर्णन है। श्री महावीरजी क्षेत्र की स्थापना विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दि के. सं. 1826 के आस पास दीवान जोधराजजी ने की थी। अतः उक्त राय की पोथी उन्नीसवीं शताब्दि की अथवा पश्चात् लिखी गई है। परंतु उन्नीसवीं शताब्दि में लिखा जाने वाला विवरण निकट की और निकटतम की शताब्दियों का चाहे वह जनश्रुतियों, दंत कथाओं पर ही क्यों न लिखा गया हो नाम, स्थान एवं कार्य कारणों के उल्लेख में तो विश्वसनीय हो सकती है। इस दृष्टि से उक्त राय की उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दि में लिखी हुई

पुस्तक में अगर सतरहवीं शताब्दि की कोई महत्वपूर्ण घटना प्रसंग वर्णित है तो वह विश्वास करने के योग्य ही समझा जा सकता है।

दूसरा धनपति साह का पल्लीवाल वैश्यों में विक्रमीय सतरहवीं शताब्दि में पाली का त्याग करने के कार्य को उठाना इस पर भी विश्वास योग्य ठहरता है कि उसी शताब्दि में पाली ब्राह्मणों ने पाली का त्याग किया था। दोनों में घनिष्ट एवं गाढ़ संबंध होने के कारण किसी तृतीय कारण से अथवा दोनों में उत्पन्न हुए कोई तनाव पर दोनों वर्णवाले पाली एक साथ अथवा कुछ आगे पीछे छोड़ चले हों यह स्वभाविक है।

तुलाराम ने 45 गोत्रों को निमंत्रित किया था, परंतु आये 33 गोत्र ही थे। राय की पुस्तक में तुलाराम के पूर्वजों के नाम इस प्रकार (–) चिह्न लगा कर सरल पंक्ति में लिखे गये हैं कि पिता, पुत्र और भाई को अलग कर लेना संभव नहीं। गंगाराम, खेमकरन और घासीराम भाई हो सकते हैं। तुलाराम खेमकरन का तृतीय पुत्र था। धनपति के दो पुत्र गुज्जा और सोहिल थे। धनपति प्रतिष्ठित श्रीमंत एवं जाति का नेता था। पल्लीवाल वैश्यों को पालीवाल ब्राह्मणों को 1400 टका (उस समय के दो पैसा और 1400 सीधा सिद्धाहार, जिसमें इक सेर आटा और उसी माप से दाल, धृत, मसाला देना होता था। यह दैनिक था अथवा तैथिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक इस संबंध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। परंतु जैसी राजस्थान में प्रथा है यह पाक्षिक होगा और अमावस्या और पूर्णिमा पर प्रत्येक मास दिया जाता होगा। यह लगान भारी थी। धनपति ने समस्त पल्लीवाल ब्राह्मण कुलों को एकत्रित करके उक्त वृत्ति में कुछ न्यून करने का सुझाव रखा। पल्लीवाल ब्राह्मणों ने उक्त प्रस्ताव पर कुछ भी विचार करने से अस्विकार किया और इस पर दोनों में भारी तनाव उत्पन्न हो गया। निदान धनपति साह के नायकत्व में पल्लीवाल वैश्य समाज ने पाली का त्याग करके चले जाने का निश्चय किया और वे पाली का त्याग करके मेवाड़, अजमेर, जयपुर, ग्वालियर, मौरेना, हींडौन की ओर चले गये और धीरे-धीरे सर्वत्र राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश और संयुक्त प्रांत में फैल गये।

पाली से पल्लीवाल वैश्य संघ चल कर सहाजिगपुर आया और साडोरा पर्यंत तो संगठित रूप से बढ़ता रहा। साडोरा से विशेषतः संघ सर्व दिशाओं में विसर्जित होकर यथा सुविधा जहाँ- तहाँ बस गया। धनपति शाह के पुत्र गुंजा और सोहिल साडोरा में बसे। गुंजा के 45 और सोहिल के 7 पुत्र हुए। इन (52) पुत्रों की स्मृति में 52 बावन लड्डु विवाहोत्सवों में बेटे वालों को लड़की वालों की ओर से दिये जाते हैं।

पल्लीवाल वैश्यों ने पल्लीवाल ब्राह्मणों की लगान के कारण और पल्लीवाल ब्राह्मणों ने राज्य के भूमि लगान के कारण पाली का त्याग कर दिया और पाली कमजोर हो गई। पल्लीवाल वैश्य उत्तरपूर्व और ब्राह्मण दक्षिण-पश्चिम की ओर गये। उत्तर पूर्व व्यापार धंधा के योग्य स्थल होने से वैश्य व्यापार धंधा और कुछ कृषि कार्य में प्रवृत्त और ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम में कृषि कार्य में ही पूर्ववत प्रवृत्त हुए। आज भी दोनों वर्ग उक्त प्रकार ही उक्त प्रांतों में ही वास कर रहे हैं। वैश्य तो पाली त्याग के समय से पूर्व भी गुर्जर, सौराष्ट्र, मालवा, मध्य प्रदेशों में न्यूनाधिक संख्या में पहुँच गये थे, परंतु पूर्णतः पाली का त्याग इस जाति ने वि. की सतरहवीं शताब्दि में ही किया, यह विश्वस्त है।

ऐसा लिखा एवं जानने को भी मिला है कि पल्लीवाल वैश्य केवल पूर्व-उत्तर की ओर ही नहीं गये कुछ ब्राह्मणों के संग अथवा आगे पीछे पश्चिम की ओर जैसलमेर, बाड़मेर और दक्षिण में कच्छ, काठियावाड़ से आगे भी गये। ये कुशल व्यापारी तो थे ही। जैसलमेर जैसे अनपढ़, अछूत प्रदेश में इन्होंने तुरंत अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। वहाँ जागीरदार, भूमिपतियों को नकद रकम उधार देते और उनकी समस्त आय ले लेते थे। किसानों के उपर भी इन नियमों का प्रभाव पड़ा और वे भी इनके वशवर्ती हो गये। कहते हैं कि जैसलमेर के दीवान सावनसिंह को वैश्यों का यह बढ़ता हुआ प्रभाव एवं प्रभुत्व बुरा लगा और उसने इनका बढता हुआ प्रभुत्व रोका ही नहीं, लेकिन इनको जैसलमेर राज्य छोड़ देने तक के लिए बाधित किया और निदान तंग आकर ये वहाँ से अपने अभिनव निर्मित मकानों को पुनः छोड़कर बीकानेर, सिंध और पंजाब आदि प्रांतों की ओर बढ़े और जहाँ तहाँ बसे। इन प्रांतों में जहाँ-जहाँ ये पल्लीवाल वैश्य बस रहे हैं, उनमें प्रायः अधिक उस समय से ही बसते आ रहे हैं। जैसलमेर व बीकानेर राज्य के कई छोटे-बड़े ग्रामों में उजड़े मकान एवं खण्डहर उनकी स्मृति आज भी करा रहे हैं। ऐसा जानने को मिलता है कि पाली के अधिकारी राजा ने पाली के श्रीमंत वैश्यों से यवन शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में अर्थ सहायता एवं जन सहाय मांगा और यह स्वीकार न करने पर उसने वैश्यों को पाली एक दम त्याग कर चले जाने की आज्ञा दी। यह भ्रामक एवं मिथ्या विचार है। तेरहवीं शताब्दि में राव सींहा का पाली पर प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। उसके वंशजों में से आज पर्यंत किसी एक नृप को भी यवन सत्ता के विरुद्ध लड़ना न पड़ा। यह यवन शक्ति से लड़ने के लिए सहाय मांगने का विचार उठता ही नहीं। राव सींहा की सत्ता के पूर्व पाली पर जाबालिपुर के राजा का अधिकार था।

पाली और पल्लीवाल

पाली नगर का पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल जाति का परस्पर संबंध 'पाली' शब्द की समानता पर तो ध्वनित होता ही है, परंतु इसके इतिहास एवं पुरातत्व संबंधी प्राचीन प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं और राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ओझाजी, टांड में घनिष्ट संबंध रहा हुआ बतलाते हैं। पाली में प्राप्त प्राचीनतम लेख वि. सं. 1144, 1151 और 1201 में पाली पल्लिकीय शब्दों का प्रयोग इन तीनों में प्राचीनतम संबंध को प्रगट करने में पूर्ण सक्षम है। अधिक उहा पोह की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

कन्नौज के अंतिम महाराज राठौड़ या गहडवाल जयचंद्र के मुहम्मद गोरी के हाथों अंत में परास्त हो गये। कन्नौज का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। वहाँ से कई राठौड़ कुल और अन्य प्रतिष्ठित कुल भारत के अन्य भागों में चले गये और जिसको जैसा अवसर प्राप्त हुआ उसने अपना वैसा वैसा चलन स्वीकार किया। कई कुल वीरों ने छोटे-छोटे राज्य भी स्थापित किये। ऐसे पुरुषों में जोधपुर के राठौड़ राजवंश का प्रथम पुरुष रावसींहा था। रावसींहा ने आकर पाली में अपना राज्य स्थापित किया। इसके संबंध में भांति-भांति की किंवदन्तियाँ प्रचलित है, परंतु यहाँ राठौर राज्य की स्थापना का विषय प्रस्तुत इतिहास का अंग नहीं है। मात्र इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि पाली के समृद्ध व्यापारी श्रेष्ठि श्रीमंतों की सुरक्षा की नितान्त आवश्यकता थी। पाली इस समय समृद्ध नगरों में अग्रगण्य तो था, परंतु राजधानी नगर नहीं था। पाली को राजा की उपस्थिति अत्यंत आवश्यक थी। जाबालिपुर से भी अधिक समृद्ध था। पाली के आस-पास छोटे-छोटे जागीरदार भूमिपति बालेचा चौहान रहते थे और वे अवसर देखकर पाली को, पाली के व्यापार को, मार्ग में व्यापारिक को भांति भांति की हानियाँ पहुँचाया करते थे। ठीक ऐसे ही विषम काल में रावसींहा अपने कुछ साथियों के साथ इधर पाली होकर जा रहे थे। पाली निवासी प्रतिष्ठित पुरुषों ने रावसींहा को सर्व प्रकार योग्य वीर न्यायी समझ कर पाली में अपना राज्य स्थापित करने की प्रार्थना की। रावसींहा इस अवसर की शोध में तो थे ही। इस प्रकार उन्होंने सहज ही पाली में अपना राज्य स्थापित किया। राव सींहा अपने अंतिम समय तक पाली में ही राज्य करते रहे। जालौर परगना के बीठू ग्राम में वि. सं. 1330 का. कृ. 12 सोमवार का देवल शिला लेख रावसींहा की मृत्यु तिथि का प्राप्त हुआ है। बीठू पाली से 14

मील उत्तर पश्चिम में है।

पल्लीवाल कहे जाने वाले ब्राह्मण वैश्यों के अतिरिक्त बढ़ई, छीपी, लोहार, स्वर्णकार आदि भी भारत के भिन्न-भिन्न भागों में बसे हुये पाये जाते हैं। इनमें पल्लीवाल ब्राह्मण और पल्लीवाल वैश्य तो पाली के पीछे एक जाति के रूप में ही प्रतिष्ठित हो गये हैं। पाली में भी इन दोनों वर्गों में घनिष्ट संबंध यजमान पुरोहित रहने का प्रमाण मिलता है। जैसे श्रीमाली वैश्यों का श्रीमाली ब्राह्मणों के साथ संबंध रहा हुआ प्राप्त होता है ठीक उसी भांति का पल्लीवाल वैश्य और ब्राह्मणों में संबंध था।

पाली की प्राचीनता का प्राचीनतम प्रमाण पाली नगर के उत्तर पूर्व में बना हुआ पातालेश्वर महादेव का विक्रमीय नौवीं शताब्दि का बना हुआ मंदिर है। इस प्रमाण से यह कहा जा सकता है कि पाली की प्राचीनता नवीं शताब्दि से भी पूर्व मानी जा सकती है। **आज इतना प्राचीन पाली उतना बड़ा नगर भले न भी रहा हो, फिर भी वह राजस्थान का प्रसिद्ध व्यापारिक नगर तो आज भी है ओर वहाँ पल्लीवाल ब्राह्मणों के लगभग 500 घर आज भी बसते हैं। एक मोहल्ला आज भी पल्लीवाल मोहल्ला के नाम से वहाँ कीर्तित है।** पाली के पल्लीवाल ब्राह्मण और वैश्य दोनों बड़े-बड़े व्यापारी वर्ग रहे हैं। इनकी मांडवी और सूरत जैसे व्यापारी नगरों में कोठियाँ और दुकानें थीं। ये दूर-दूर तक व्यापार करने जाया आया करते थे। **खंभात जैसे सुदूर बंदर नगर में जैन मंदिर और ज्ञान भंडारों में पल्लीवाल श्वेतांबर जैन श्रेष्ठियों द्वारा लिखवाई हुई कई ग्रंथ प्रतियां और प्रतिष्ठित प्रतिमायें सिद्ध कर रही हैं कि विक्रम की तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दि तक तो श्वेतांबर पल्लीवाल कच्छ, काठियावाड़, उत्तर गुर्जर पतन के प्रदेशों में सर्वत्र फैल चुके थे।** प्रस्तुत इतिहास में वर्णित कई परिचयों से यह विश्वास किया जा सकता है। राजस्थान के जयपुर, भरतपुर, अलवर राज्यों में व उत्तर प्रदेश में आगरा, ग्वालियर, मथुरा विभागों में भी पल्लीवाल वैश्य कुल विक्रम की 15-16 वीं शताब्दी पर्यंत भरपूर फैल चुके थे। इसके प्रमाण में भी वर्तमान प्रस्तुत इस लघु इतिहास में कुछ प्रसंग आये हैं।

एक दंतकथा के अनुसार पाली को, वहाँ के समस्त पल्लीवाल वैश्य और ब्राह्मणों को अकस्मात भारी धर्म संकट उपस्थित होने पर छोड़ कर चला जाना पड़ता था। जाना ही नहीं पड़ा, परंतु साथ ही यह शपथ लेकर कि कोई भी पल्लीवाल अपने को अपनी पिता की सच्ची संतान मानने वाला, लौट कर पाली में

नहीं बसेगा और वहाँ का अन्न जल ग्रहण नहीं करेगा। हमको तो यह कथा पीछे से जोड़ दी गयी प्रतीत होती है ऐसी घटना पाली में विक्रमीय 17 वीं शताब्दि के प्रारंभ में घटी उल्लेखित मिलती है। किन्तु इस शताब्दि में तो पाली पर जोधपुर राठौड़ हिन्दू राजवंश का शक्तिशाली यवनशासकों द्वारा पूर्ण सम्मानित राज्य था। हिन्दू राज्य में हिन्दूओं को कोई धर्म संकट उत्पन्न होना माना नहीं जा सकता और जो हिन्दू राज्य में भी कोई धर्म संकट उपस्थित हो जाना केवल गप्प है। इतिहास में भी कहीं ऐसा हुआ प्रतीत नहीं होता कि पाली पर कभी भयंकर हिन्दू विधर्मी शत्रुओं द्वारा कोई भयंकर आक्रमण हुआ हो, जिसके दुखद परिणाम में पाली के निवासियों को पाली सदैव के लिये त्याग कर जाना पड़ा हो। राव सींहा ने पाली में विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में अपना प्रभुत्व भली भांति जमा लिया था और उसी राव सींहा के वंशजों के अधिकार में आज तक पाली चला आता रहा। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि ऐसा भयंकर प्रकोप इसके पूर्व हुआ तो वह भी मानने में नहीं आ सकता। गजनवी और गौर के आक्रमणों के पूर्व तो कोई हिन्दू विरोधी शत्रु का आक्रमण राजस्थान में हुआ नहीं सुना गया। इन दोनों के आक्रमणों के स्थान, संवत्, मार्गों की आज इतिहासकारों ने पूरी-पूरी शोध कर के अपनी कई रचनायें इतिहास के क्षेत्र में प्रस्तुत कर दी है, परंतु उनमें कहीं भी पाली पर आक्रमण करने का अथवा आक्रमण के प्रसंग में मार्ग में पाली को विध्वंसित कर देने का कोई वर्णन पढ़ने में अथवा जानने में नहीं आया कि अमुक सैनिक पदाधिकारी द्वारा किये गये अत्याचारों एवं धर्मभ्रष्ट व्यवहारों के कारण पल्लीवालों को पाली छोड़कर जाना पड़ा। गौरी और उसके सैनिक अथवा उच्चाधिकारी सेना नायक अजमेर से आगे बढ़े ही नहीं। गुलाम वंश के शासन काल में जालौर पर, मंडोर पर इल्तुमिस ने वि. सं. 1295-96 में आक्रमण अवश्य किया था, परंतु पाली को भी नष्ट किया हो ऐसा कोई विश्वसनीय उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। और इस समय तो पाली राठौड़ वीरवर रावसींहा की सुरक्षा में आ चुका था। विक्रम की सोहलवीं शताब्दी में राठौड़ राजकुल की राजधानी मंडोर से जोधपुर आ गई थी और उन्हीं वर्षों में जोधपुर राज्य का प्रबंध भी समुचित ढंग से सुदृढ़ बनाया गया था। इस राज्य सुव्यवस्था के स्थापना काल में इस संभव है कि पाली के ब्राह्मण कुल राजा से अप्रसन्न हो गये हों। पाली में वैसे तो एक लाख ब्राह्मण घरों का होना बताया जाता है, परंतु यह संख्या मानने में नहीं आ सकती। हाँ इतना

अवश्य सत्य है कि पल्लीवाल कहे जाने वाले आज के ब्राह्मण अधिक से अधिक संख्या में पाली में ही बसते थे और वैश्यों में भी कई अति समृद्ध घर तो व्यापार करते थे और शेष कृषि का कार्य करते थे। पाली की समस्त कृषि योग्य भूमि पर ब्राह्मणों का एक छत्र अधिकार था। अन्य कृषक जातियों के अधिकार में कृषि योग्य भूमि नाम मात्र की थी। राज्याधिकारियों ने ब्राह्मण कुलों से भूमि लेकर अन्य कृषक लोगों को देने का प्रयत्न किया, इस कारण ब्राह्मण कुल के लोग अप्रसन्न होकर संगठित रूप से पाली का त्याग कर के चले गये हों। यह कारण इसलिए अधिक माना जा सकता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण कृषि कर नहीं देते थे और प्रायः राजागण भी इनसे कोई कर नहीं लिया करते थे। पाली जैसे समृद्ध व्यवसायी नगर पर राज्य को व्यय अधिक करना पड़ता ही था और उसके बदले में अगर कुछ भी आय न हो तो यह अधिक समय तक सहनीय भी नहीं हो सकता था। इस स्थिति में राज्य ने ब्राह्मण कुलों से जमीन ले ले कर अन्य कर देने वाले कृषक कुलों को देना प्रारंभ किया हो और इन कृषक ब्राह्मण कुलों ने अपने साथी वैश्य कुलों से इस हानि की पूर्ति में सहानुभूति चाही हो और वे भी उनके पोषण के लिये सदैव रीति से अधिक सहाय करने को तैयार न हुए या बल्कि उल्टे उनके पोषण के भार को कम करने की सोचते रहे हों। इस कारण ब्राह्मण और राज्य तथा ब्राह्मण और वैश्यों का आपस में तनाव बढ़ गया हो, जिस के फलस्वरूप ब्राह्मण कुल के लोग पाली को त्याग कर निकल चले हों, यह मानना संभव है। पल्लीवाल वैश्यों द्वारा पाली के त्याग का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इतना अवश्य माना जा सकता है कि ब्राह्मण कुलों की सहानुभूति में इन वैश्य कुल में से अधिक अथवा न्यून लोगों ने पाली का त्याग किया हो और अन्यत्र जाकर बस गये हों। यह संभव हो सकता है क्योंकि वैश्यों और ब्राह्मणों के प्रगाढ़ संबंध थे, दोनों में यजमान और पुरोहित का संबंध था। ब्राह्मण कुलों की अधिक जिम्मेदारी इन वैश्य कुलों पर थी। ब्राह्मणों के कृषि हीन होने पर वह जिम्मेदारी अधिक बढ़ने वाली थी। अतः दोनों ने पाली का त्याग करना और अन्य राज्य या क्षेत्रों में जाकर निवास करने का सामूहिक रूप से स्वीकार करके यह लोग पाली का त्याग करके चले गये हों। जो कुछ हो धर्म संकट जैसी तो कोई घटना नहीं हुई। राज्य प्रकोप तो फिर भी माना जा सकता है। परंतु वह भी भयंकर रूप से नहीं। मारवाड़ राज्य के उस समय के इस समृद्ध पाली नगर का अगर ऐसा भयंकर विध्वंस हुआ होता अथवा इस प्रकार

पूर्णतः खाली कर दिया गया होता तो वैसी घटना का कुछ तो उल्लेख जोधपुर राज्य के इतिहास में मिलता, घटना बढ़ा-चढ़ाकर कविता में पिरोई गई है। पाली का त्याग करके ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम दिशा में गये और वैश्य पूर्व-उत्तर दिशा में, यह ठीक भी है। पल्लीवाल वैश्य आज भी मारवाड़ के उत्तर पूर्व में आये हुए अलवर, जयपुर, भरतपुर, ग्वालियर राज्यों तथा संयुक्त बीकानेर राज्यों और उनके निकटवर्ती भागों में पाये जाते हैं। वैसे तो दोनों वर्गों के थोड़े थोड़े घर तो राजस्थान की एवं मालवा, मध्य भारत की सर्वत्र भूमियों में पाए जाते हैं जो धीरे-धीरे व्यापार, कृषि, धंधा आदि की दृष्टियों एवं अन्य सुविधाओं से आकर्षित होकर जा बसे हैं। मेवाड़ में पल्लीवाल ब्राह्मणों को नन्दवाना बोहरा भी कहते हैं।

पाली और पल्लीवाल जाति का जैसा परस्पर संबंध पाया जाता है। वैसा ही पल्लीवाल पल्लिकीय गच्छ का भी इन दोनों के साथ पाया जाता है। **पल्ली गच्छ की स्थापना पाली नगर में भगवान महावीर के पट्ट पर 17वें आचार्य यशोदेवसूरिजी द्वारा सं. 329 वैशाख सु. 5 को हुई।** उक्त संवत् बीकानेर के बड़े उपाश्रय के ज्ञान भंडार में प्राप्त एक अप्रकाशित पल्लीवाल गच्छ पट्टावली में जो श्री नाहटाजी को प्राप्त हुई थी और जिसकी प्रतिलिपि श्री आत्मानन्द अर्ध शताब्दी ग्रंथ में श्री नाहटाजी ने अपने लेख 'पल्लीवाल गच्छ पट्टावली में दी है। उक्त संवत् कहाँ तक ठीक है, प्रमाणों के अभाव में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य प्रमाणित आधार पर लिखा जा सकता है कि पल्लीवाल गच्छ का अब तक प्राप्त प्राचीनतम मूर्ति लेख पाली में प्राप्त वि. सं. 1144, 1151 और 1201 है। उक्त लेखों में पल्लिकीय प्रद्योतनसूरि का नाम स्पष्ट है। प्राचीनता और नाम साम्य के कारण पल्लीवाल गच्छ का पाली और पल्लीवाल जाति से गहरा संबंध माना जा सकता है, परंतु यह मानना कि पल्लीवाल जाति पल्ललीवाल गच्छीय आचार्य, साधु, मुनियों की ही अनुरागिनी अथवा इनको ही गुरु रुप से मानने वाली रही, ठीक नहीं। उपकेश गच्छाचार्य द्वारा प्रतिबोधित पल्लीवाल जाति में भी कई गच्छ मान्यतायें पायी जाती है। और यह पल्लीवाल जाति पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति, मंदिर लेखों व प्रशस्तियों से भली भांति स्पष्ट है। तीनों में घनिष्ठ संबंध था, यह वस्तुतः मान्य है। पल्लीवाल गच्छाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें और मंदिर अन्य जैन जातियों जैसे ओसवाल, श्रीमाल आदि के प्रकरणों, वृत्तों में भी उल्लेखत प्राप्त होते हैं।

पल्लीवाल जाति में जैन धर्म

यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि पल्लीवाल जाति में जैन धर्म का पालन करना किस समय से प्रारंभ हुआ, पर पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन समय से जैन धर्म पालन करती आई है। पुरानी पट्टावलियों वंशावलियों को देखने से ज्ञात होता है कि पल्लीवाल जाति में विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व से ही जैन धर्म प्रवेश हो चुका था।

इसकी साक्षी के लिए कहा जा सकता है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल नगर में 90,000 मनुष्यों को तथा पद्मावती नगर के 45,000 मनुष्यों को जैन धर्म की शिक्षा व दीक्षा देकर जैन बनाये थे। बाद में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में लाखों क्षत्रियादि लोगों को जैन धर्म की दीक्षा दी । इसी प्रकार आचार्य श्री ने मरुधर प्रांत में बड़े-बड़े नगरों की जगह छोटे-छोटे ग्रामों में भ्रमण कर करीब 14 लक्षधर वालों को जैनी बनाया था। विहार के समय जब पाली शहर, श्रीमाल नगर और उपकेश नगर के बीच में आया होगा तब आचार्यश्री वहाँ अवश्य पधारें होगें और वहाँ की जनता को जैन धर्म में अवश्य दीक्षित किया होगा। हाँ उस समय पल्लीवाल नाम की उत्पत्ति नहीं हुई होगी, पर पाली वासियों को आचार्य श्री ने जैन अवश्य बनाये थे। आगे चल कर हम देखते हैं कि आचार्यश्री की अध्यक्षता में एक श्रमण सभा का आयोजन किया था जिसमें दूर-दूर के हजारों साधु-साध्वियों का शुभागमन हुआ था। इस पर हम विचार कर सकते हैं कि उस समय पाली नगर में जैनियों की खूब आबादी होगी तभी तो इस प्रकार का बृहद कार्य पाली नगर में हुआ था। इस घटना का समय उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना करने के पश्चात् दूसरी शताब्दी का बतलाया है। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पाली की जनता को जैन धर्म में दीक्षित कर जैन धर्म का उपासक बना दिया। उस समय के बाद तो कई श्रावकों ने जैन मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई तथा कई श्रद्धा संपन्न श्रावकों ने पाली से शत्रुंजयादि तीर्थों के संघ भी निकाले थे। इस प्रमाणों से इस निर्णय पर आ सकते हैं कि पाली की जनता में जैन धर्म श्रीमाल और उपकेश वंश के समय प्रवेश हो गया था, जैन शासन में साधुओं का जिस नगर में विशेष विहार हुआ उस ग्राम नगर के नाम से गच्छ कहलाये। उपकेशपुर के उपकेश गच्छ, कोरंट नगर के नाम के कोरंट गच्छ और पाली नगर के नाम से पल्लीवाल गच्छ उत्पन्न हुआ। इस गच्छ की पट्टावली देखने से पता चलता है कि यह गच्छ बहुत पुराना है। जो उपकेश गच्छ और कोरंट गच्छ के बाद तीसरा नंबर है। संवत् 329 पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति का समय है।

पल्लीवाल जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक ही हैं...

तन्वाना सकला कलापमधिकं वर्याजंवालंकृतं
लक्ष्मीवंशनटीव यं स्त्रितवती प्रेखद् गुरगांध्यासितम्।।
रंगान्नोतरणाभिलाषमकरोद् व्यावर्णतामागता,
पल्लीवाल इति प्रसिद्धमहिमा वंशोडस्ति सोडयंभूवि।।
वंशः पल्लीवालोडस्ति सशाखः सत्पववान्।
भूभृतोडप्युररीचक्रे येनौकच्छत्रिमात्मना।।
यत्रानेकबुधा अनेककवयो धिष्ण्यानि भूयांस्यलं,
चंद्रस्योपचयः कलंकविकलःसञ्जायते सर्वदा।।
वक्रः कोड़पि न दृश्यते न च गुरुमित्रोदये निष्प्रभः,
पल्लीवाल जनान्वयो नवनभोलक्ष्मीं दधानोडस्ति वः।।
सच्छायपर्वो धनजैनधर्मः स्थानेषु सर्वेषु विशेषित श्रीः,
वंशः प्रसिद्धो भूवि पल्लीवालाभिधोडस्ति भूमिभूति लब्धरूपः।।

(जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह – प्र. 11, 27, सं. 1299 प्र. 9, 60)

पाली –

मारवाड़ में पाली नाम का बड़ा शहर है। प्राचीन गुजरात की राजधानी श्रीमालनगर संवत 1071 में टूटा, तब वहाँ के ब्राह्मण, महाजन आदि पाली में आकर बसे। इससे पाली विशेष रूप से आबाद हुआ और व्यापार का प्रमुख केन्द्र बना। यहाँ प्राचीन काल में 'पूर्णभद्र महावीर' का विख्यात् जैन तीर्थ था।

पाली के व्यापारियों के सांभर, अजमेर, नागदा, पालनपुर एवं पाटण के साथ व्यापारिक संबंध थे। पाली शहर के निवासी और व्यापारी जहाँ भी जाते वहाँ अपनी पहचान 'पल्लीवाल' या 'पालीवाल' के नाम से देते हैं।

"1" जिस तरह उपकेशनगर से उपकेशगच्छ और उपकेश जाति का जन्म हुआ वैसे ही पाली नगर से पल्लीवाल गच्छ एवं पल्लीवाल जाति का उत्थान हुआ।"1"

"1" भारत के संघ को संघठित रहना बहुत जरुरी था। इसलिए भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान महावीर स्वामी की परंपरा के श्रमणों को मुख्य चार शाखाएँ,

उपशाखाएँ एवं मुनि संघ संबंधी क्षेत्रों में सतत विहार करते थे एवं धर्मप्रचार करते थे। कालांतर में ये मुनि संघ संबंधी प्रदेश, मुख्य नगर अथवा मुख्य मुनिनायक की किसी विशिष्ट घटना के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। इस तरह धीरे-धीरे 84 गच्छ बने।

''2'' गुर्जरेश्वर कुमारपाल सोलंकी (सं. 1199 से 1229) ने संवत् 1207 में चंद्रावती होते हुए अजमेर पर हमला किया। वापसी में अजमेर सपादलक्ष, मेडता एवं पाली में अपना साम्राज्य कायम किया और मालवा की तरफ प्रस्थान किया - ''2'' (प्रक. 36, पृ. राजावली सोलंकी वंश)

(''2'' सं. 1207 पाली का प्रथम विनाश (भंग) हुआ।)

सप्तोतर-सूर्यशते विक्रमसंवत्सरे त्वजयमेरौ।

दूर्गे पल्लीभंग त्रुटितं पुस्तकमिदमग्रहीत वदनु।।1।।

अखिलत् स्वयमत्र गवं श्रीमज्जिनदत्तसूरि शिषयभव।

स्थिरचंद्राख्यो गालिरिह कर्मक्षयहेतुमात्यनः।।2।।

अर्थात् सं. 1207 में पाली टूटा तब 'पंचाशक सूत्र' भी खंडित हुआ जिसे आ. जिनदत्तसूरि के प्रशिष्य पं. स्थिरचंद्रगणि ने लिखा।

गुजरात की सेना ने अजमेर जीत लिया तो पालीनगर के निवासियों ने सोचा पाली से बाहर चले गये होगे। लेकिन गुजरात नरेश कुमारपाल ने प्रजा को सांत्वना दी होगी और पाली को पूर्व स्थिति में लाने का आश्वासन एवं ध्यान दिया होगा। उपरोक्त घटना के बाद गुजरातियों ने पाली में बसना शुरु कर दिया होगा ऐसी धारणा है। वह स्थल आज भी 'गुजराती कटरा' के नाम से विख्यात् है। तत्पश्चात् इसी शताब्दि में पाली पर दूसरी बार संकट के बादल छाये।

दिल्ली के बादशाह शाहाबुद्दीन गौरी ने भारत पर तीन बार आक्रमण किया था। उसने हिजरी संवत 574 (वि. सं. 1234) में गजनी से मुलतान होते हुए सीधे गुजरात पर आक्रमण किया और कुतुबुद्दीन ऐबक ने सं. 1254 में गुजरात पर फिर आक्रमण किया।

(देखिये प्र. 44 दिल्ली के बादशाह)

इस समय शाहाबुद्दीन या कुतुबुद्दीन ने पाली को ध्वस्त किया था। जिसमें मुस्लिम सेना ने ऐसा कहर ढाया कि पाली के ब्राह्मण, महाजन, वैश्य वगैरह हिन्दू

प्रजा ने सदा के लिए पाली का त्याग कर दिया तथा कहीं और जाकर बसना शुरु किया।

पाली से तितर बितर हुई इस प्रजा ने पाली का पानी कभी न पीने की प्रतिज्ञा कर ली। आज भी इनके वंशज पाली जाते हैं तो वहाँ का पानी भी नहीं पीते हैं। इनके वंशज आज भी पालीवाल या पल्लीवाल के नाम से प्रसिद्ध है। इस पल्लीवाल वंश की 'वरहूदिया' वगैरह अनेक शाखाएँ हैं।

पल्लीवाल जाति –

पल्लीवों के लिए मांडालिक ठक्कुर, साहू, संघपति इत्यादि विशेषणों का उपयोग किया जाता है। कुल मिलाकर पल्लीवाल धनवान, सुखी एवं मान–सम्मान वाले राज्य मान्यता प्राप्त श्वेतांबर जैन थे। पल्लीवाल जैनों ने अनेकों धार्मिक कार्य किये हैं।

- पाली के प्रद्योतन गच्छ के लक्ष्मण (लखमणा) के पुत्र देशल ने सं. 1151 को आषाढ़ शुक्ला अष्टमी बृहस्पतिवार को पाली में पूर्णभद्रमहावीर के जिन–चैत्य की देरी में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित की। (जैन प्र. पु. सं. प्र. 108)
- महादानी सेठ लाखण पल्लीवाल ने सं. 1299 की कार्तिकी मास में राजगच्छ के आचार्य सिद्धसेन के पट्टधर (जो एक उतकृष्ट चारित्रधारी आ. रत्नसेन के नाम से विख्यात थे) के उपदेश से 'समराईच्चकहा' लिखवाकर उनके पास व्याख्यान करवाया। (जैन पु. प्र. सं. प्र. 35)
- वरहूडिया नामक पल्लीवाल के वंशजों ने शत्रुंजय, गिरनार, आबू जैसे बड़े–बड़े तीर्थ स्थानों में मंदिर, देरियें, जिन प्रतिमाएँ, परिकर एवं प्रतिष्ठाएँ करवायी थीं। (प्र. क. 38, वरहूडीया वंश प्र. 44)
- उनके पौत्र जिनचंद्र ने सं. 1292 मैं, सं. 1295 में बीजापुर में तपागच्छ के आचार्यों को विनती कर चातुर्मास करवाया। अनेक जैन शास्त्रों की रचना करवायी। (प्र. 38 प्र. 44, 45)

वरहूडिया जिनचंद्र के सुपुत्र वीरधवल एवं भीमदेव, जो आगे जाकर विद्यानंदसूरि (सं. 1302 से 1327, प्र. 45) एवं दादा धर्मघोषसूरि (सं. 1302 से 1357, प्र. 45) के रुप में विख्यात हुए, जो महाज्ञानी, त्यागी एवं तपस्वी थे।

दोनों आचार्यों के अपनी जाति के होने के कारण पल्लीवाल उनकी परंपरा के प्रति अधिक लगाव रखने लगे।

सोही पल्लीवाल के पौत्र आहड़, उनके पुत्र पदमसिंह की पुत्री भावसुन्दरी ने साध्वी कीर्तिगणि के पास दीक्षा ली थी। आहड के पुत्र श्रीपाल ने सं. 1303 के कार्तिक शुक्ला 10, रविवार को भरूच में आ.कमलप्रभसूरि के उपदेश में 'अजितनाथ चरित्र' की रचना करवायी और उनके पट्टधर आ. नरेश्वरसूरि के पास व्याख्यान करवाया। (प्र. 38, सोहीवंश)

सहजीगपुर के देहा पल्लीवाल के पुत्र महीचंद्र के पुत्र रत्नपाल विजयपाल ने अपने पूर्वजों के कल्याणार्थ भ. मल्लीनाथ की देरी एवं प्रतिमा भरवायी, जिसकी चंद्रगच्छ के आ. हरिभद्रसूरि के शिष्य आ. यशोभद्रसूरि के पास प्रतिष्ठा करवायी। (प्राचीन जैन लेख संग्रह, भा.-2, लेखांक 545)

साहू ईश्वर पल्लीवाल के पुत्र कुमारसिंह ने नाशिक में भगवान चंद्रप्रभस्वामी के मंदिर का संपूर्ण जिर्णोद्धार करवाया।

(विविध तीर्थकल्प में नासिकपुर कल्प)

कर्पूरादेवी पल्लीवाल ने सं. 1327 में 'शतपदी दीपिका' को रचना करवायी। (जैन पु. प्र. सं. प्र. 111)

पूणा पल्लीवाल के पौत्र गणदेव ने खंभात की पोषाल में 'त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र' भेंट किया।

वीरपुर के धनाड्य देदाधर पल्लीवाल की पत्नी रासलदेवी ने 'गणधर-सार्धशतक' की टीका लिखवायी। (जैन. पु. प्र. सं. प्र. 103)

विक्रमसिंह वगैरह तीन पल्लीवाल भाइयों ने कुमारपालसिंह पल्लीवाल तथा उनकी पत्नी सिंगारदेवी के माता-पिता के कल्याणार्थ सं. 1337 के फाल्गुन शुक्ल 8 के दिन भ. महावीर स्वामी की प्रतिमा भरवायी एवं आ. माणेकसूरि के पास प्रतिष्ठा करवायी।

(आ. बुद्धि. धातुप्रतिमा लेखसंग्रह, भा. 1 लेखकांक 137)

मंत्री आभू पल्लीवाल के वंश में क्रमशः महणसिंह (पत्नी श्रीदेवी), भीम (पत्नी कर्पूरादेवी), सोनी सुर (पत्नी सुकदेवी), सोनी प्रथिमसिंह (पत्नी प्रीमलदेवी) सन्हा और धनराज हुए। सोनी प्रथिमसिंह को सिंह नाम से भाई एवं

सिंहाक नाम से पुत्र था। सिंहाक, वात्सल्य गुणी एवं प्रतिभाशाली था। जिसके काका सिंह की आज्ञा से सं. 1420 के चैत्र शुक्ला दशमी के दिन पाटण में तपागच्छ के आ. जयानंदसूरि तथा आ. देवसुंदरसूरि का आचार्य पद महोत्सव का आयोजन किया। (जै. पु. प्र. सं.)

सिंहाक और धनराज के काका सिंह की आज्ञा से सं. 1441 में खंभात में तमाली स्थंभन पार्श्वनाथ के चैत्य का जिर्णोद्धार करवाया और आ. देवसुंदरसूरि के पट्टधर आ. ज्ञानसूरि का सूरिपद महोत्सव किया। (जै. पु. प्र. क्र. 24)

उनके ही चचेरे भाइयों लकमसिंह, रामसिंह ने गोवाले सं. 1442 में आ. देवसुंदरसूरि के पट्टधर आ. कुलमंडनसूरि एवं आ. गुणरत्नसूरि का सूरिपद महोत्सव किया। ((जै. पु. प्र. सं. भाग-1)

सोनी प्रथिमसिंह पल्लीवाल के सुपुत्र साल्हा ने आ. देवसुंदरसूरि के उपदेश से सं. 1442 की भाद्रपद शुक्ला द्वितीय चर्तुदशी, सोमवार को खंभात में 'पंचाशक-वृत्ति' ताड़पत्र पर लिखवायी।

(प्रशस्ति - 40)

भरतपुर के दीवान जीघारजजी पल्लीवाल ने, भ. महावीर स्वामी का मंदिर बनवाकर विजयगच्छ के भट्टारक के पास प्रतिष्ठा करवायी।

विविध ग्रंथ प्रशस्तियों के आधार से जान पड़ता है कि नंदाणी ग्राम का जसद् पल्लीवाल आ. यशोभद्रसूरि का, आमड पल्लीवाल आ. मानतुंगसूरि का, शेठ आरीसिंह तथा कुमारदेवी आ. जिनभद्रसूरि के एवं आगमगच्छ के आ. रत्नसिहं के भक्त श्रावक थे।

पल्लीवाल सेठ साहु **पद्मा पत्नी तेजल ने कुलगुरु की आज्ञा से भ.** मुनिसुव्रतस्वामी की देरी बनवायी।

(नाहर जैन ले. सं. लेखांक 57)

ठ. पल्लीवाल ने सं. 1271 के आषाढ़ शुक्ला अष्टमी रविवार को भ. आदिनाथ की प्रतिष्ठा करवायी। यह धातुमूर्ति वर्तमान में पाटण में बिराजमान है।

(आ. बुद्धिसागर, जैन प्रतिमा लेख संग्रह भा. 1 लेखकांक 10)

भीम पल्लीवाल के पुत्र सेल एवं तेज ने सं. 1396 में भ. शांतिनाथ की प्रतिमा भरवायी और राजगच्छ के आ. हंसराजसूरि के पास प्रतिष्ठा करवायी।

चौरासी न्यात

चौरासी न्यातों तथा उनके स्थानों के नामों का विवरण–

सं.	नाम न्यात	उद्गम स्थल
1.	श्रीमाल	भीनमाल (राजस्थान)
2.	श्रीश्रीमाल	हस्तिनापुर (उत्तरप्रदेश)
3.	श्रीखंड	(राजस्थान)
4.	श्रु गुरु	आभूना डौलाई (पाकिस्तान)
5.	श्री गौड़	सिद्धपुर (पाटण)
6.	अग्रवाल	अगरोहा(आगरा–उत्तरप्रदेश)
7.	अजमेरा	अजमेर (राजस्थान)
8.	अजोधिया	(राजस्थान)
9.	अडालिया	(राजस्थान)
10.	अवकथवाल	आंवरे आभानगर (महाराष्ट्र)
11.	ओसवाल	ओसिया नगर (राजस्थान)[1]
12.	कठाड़ा	काटू (सिंध)
13.	कटनेरा	कटनेर (पंजाब)
14.	ककस्थन	वालकूंडा (कुशलगढ़)
15.	कपौला(कांगडा)	नगरकोट (कांगडा–हिमाचल प्रदेश)
16.	कांकरिया	(राजस्थान)
17.	खरवा	खेरवा (राजस्थान)
18.	खडापता	खंडवा (मध्यप्रदेश)
19.	खेमवाल	खिमतनगर (राजस्थान)
20.	खंडेलवाल	खंडेलानगर (सांडेराव–राजस्थान)
21.	गंगराडा	गंगराड (श्री गंगानगर–राजस्थान)

1. प. पू. कल्याणविजयजी के अनुसार तक्षशीला –पाकिस्तान

22.	गाहिलवाल	गोहिलगढ़ (ग्वालीयर- मध्यप्रदेश)
23.	गोलवाल	गौलगढ़ (गोपालगढ़ –राजस्थान)
24.	घोघवार	घोघा (घोघा – भावनगर)
25.	गींदीडिया	गींदोडदेवगढ़ (देवगढ़–राजस्थान)
26.	चकौड़	रथथंभ चकावा (रणथंभोर–राजस्थान)
27.	चतुरथ	चरणापुर (मध्यप्रदेश)
28.	चितौड़ा	चितौड़गढ़ (राजस्थान)
29.	चौरंडिया	चावंडिया (चंबलेश्वर–मेवाड़–राजस्थान)
30.	जायसवाल	जावल (जावरा)
31.	जालौरा	सौवनगढ़ जालौर (स्वर्णगिरि–राजस्थान)
32.	जेसवाल	जैसलगढ़ (जैसलमेर–राजस्थान)
33.	जम्बूसरा	जम्बूनगर
34.	टींटौडा	टींटौणा (टींटोइ–गुजरात)
35.	टंटौरिया	टंटेरा नगर (राजस्थान)
36.	दूंसर	ढाकसपुर (धोलका–गुजरात)
37.	दसौरा	दसौर (मंदसौर)
38.	धवलकौष्टी	धौलपुर
39.	धाकड़	धाकगढ़
40.	नालगरेसा	नराणापुर
41.	नागर	नागरचाल (मोढेरा)
42.	नेमा	हरिशचन्द्रपुरी (वर्तमान नेमावर)
43.	नरसिंघपुरा	नरसिंघापुर (नरसिंहपुर–मध्यप्रदेश)
44.	नवांभरा	नवसरपुर (ओरिस्सा)
45.	नागिन्द्रा[1]	नागिन्द्रनगर

1. जो नागवंश भी कहलाता है

46.	नाथचल्ला	सिरोही (राजस्थान)
47.	नाछेला	नाडोलाई (नारलाइ–राजस्थान)
48.	नौटिया	नौसलगढ़ (मध्यप्रदेश)
49.	पल्लीवाल	पाली (राजस्थान)
50.	परवार	पारानगर (पाकिस्तान)
51.	पंचम	पंचमनगर
52.	पौकरा	पोकरजी (पोकरण–राजस्थान)
53.	पोरवाल	(राजस्थान)
54.	पौसरा	पौसरनगर (महाराष्ट्र)
55.	वधेरवाल	वधेरा
56.	वदनौरा	बदनौर (मध्यप्रदेश–यहां पुराने अवशेष हैं।)
57.	वरमाका	ब्रह्मपुर (वरमाण ?)
58.	विदिपादा	विदिपाद (विदिशा – मध्यप्रदेश)
59.	वौगार	विलासपुरी
60.	भगनगे	भावनगर (गुजरात)
61.	मूंगडवार	भूरपुर (उत्तरप्रदेश)
62.	महेश्वरी	डीडवाड़ (पाकिस्तान–सिंध)
63.	मेडतवाल	मेडता (राजस्थान)
64.	माथुरिया	मथुरा (उत्तरप्रदेश)
65.	मौड़	सिद्धपुरपाल (मध्यप्रदेश)
66.	मांडलिया	मांडलगढ़ (राजस्थान)
67.	राजपुरा	राजपुर (गुरजात)
68.	राजिया	राजगढ़ (मध्यप्रदेश)
69.	लवेचू	लावा नगर (राजस्थान)
70.	लाड़	लावागढ़ (राजस्थान)
71.	हरसौदा	हरसौद (बिहार)

72.	हूंमड़	सादवादा (राजस्थान)
73.	हलद	हलदानगर (मेवाड़–राजस्थान)
74.	हाकरिया	नरलवरा (राजस्थान)
75.	सांभरा	सांभर (राजस्थान)
76.	सडौइया	हिंगलादगढ़ (वर्तमान पाकिस्तान)
77.	सरेडवाल	सादरी (राजस्थान)
78.	सौरठवाल	(सौराष्ट्र)
79.	सेतपाल	सीतपुर (बिहार)
80.	सौहितवाल	सौहित (सोजत–राजस्थान)
81.	सुरन्द्रा	सुरेन्द्रपुर (अवन्ती –मध्यप्रदेश)
82.	सोनैया	सोनगढ़ (मालवा)
83.	सौरंडिया	(द. गुजरात)
84.	सराक जैन	उत्तर–पूर्व भारत (पं. बंगाल, ओरिस्सा आदि)

आधार

(1) इतिहास कल्पद्रुम
(2) माहेश्वरी कुल : एक अध्ययन
(3) शुद्ध दर्पण
(4) जैन संप्रदाय शिक्षा
(5) जैन जाति महोदय
(6) जैन गोत्र परिचय
(7) जैन धर्म का मौलिक इतिहास
(8) ओसवाल दिग्दर्शन
(9) पल्लीवाल जाती
(10) जैन धर्म का इतिहास–कैलाशचंद्र जैन,
(11) जैनत्व जागरण
(12) प्राग्वट इतिहास,
(13) जैन लेख संग्रह
(14) प्रशस्ति संग्रह
(15) जैन आदि का एतिहासिक वृत्तांत
(16) श्री पार्श्वनाथ परंपरा का इतिहास।
(17) जैन परंपरा का इतिहास
(18) श्री पल्लीवाल जैन समाज
(19) हाँ! पल्लीवाल जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक है।
(20) श्री महावीरजी जैन तीर्थ : एक परिचय

पल्लीवाल जाति द्वारा निर्मित जैन मंदिर

पल्लीवाल जैन जाति ने जिन-जिन क्षेत्रों में निवास किया, वहाँ प्रायः मंदिरों का भी अपनी-अपनी धार्मिक आस्था के अनुसार निर्माण किया। इन मंदिरों में से अधिकाँश का निर्माण काल तथा निर्माण कर्त्ता दोनों के बारे में ही जानकारी प्रायःउपलब्ध नहीं है। इसका कारण मूलतः यही है कि हमारे पूर्वजों में यश की अथवा नाम की लिप्सा गौण थी, धार्मिक प्रभावना का ही भाव प्रमुख था। हो सकता है इसमें कुछ स्थानों के मंदिरों का नामोल्लेख नहीं हो सका हो।

स्थान	**मूलनायक प्रतिमा**	**निर्माण समय**
हिण्डौन (केशवपुरा)	श्री श्रेयांसनाथजी	वि. संवत् 1793
हिण्डौन (नई मण्डी)	श्री महावीर स्वामी	नवनिर्मित संवत् 2043
सॉथा	श्री कुन्थुनाथजी	संवत् 1708
करौली	श्री नेमिनाथजी	संवत् 1845
सिरस	श्री ऋषभदेवजी	संवत् 1840
डीग	श्री शांतिनाथजी	संवत् 1826
शेरपुर	श्री ऋषभदेवजी	19 वीं शताब्दी
अलीपुर	श्री वासुपूज्य स्वामी	19 वीं शताब्दी
समराया	श्री कुंथुनाथ स्वामी	19 वीं शताब्दी
वैर	श्री महावीर स्वामी	18 वीं शताब्दी
नदबई	श्री महावीर स्वामी	नवनिर्मित सन् 1979
गढ़ खेड़ा	श्री पार्श्वनाथ भगवान	18 वीं शताब्दी
झारैडा	श्री महावीर स्वामी	18 वीं शताब्दी
कुम्हेर	श्री अनंतवीर्य	18 वीं शताब्दी
कोट (मन्डावर)	श्री पार्श्वनाथ भगवान	18 वीं शताब्दी
बडौदा कान	श्री विमलनाथजी	नव निर्मित सन् 1981

स्थान	मूल नायक प्रतिमा	निर्माण समय
मण्डावर गाँव	श्री सुमतिनाथ जी	18 वीं शताब्दी
खेरली गंज	श्री मुनिसुव्रत स्वामी	संवत् 1978
बामनवास	श्री शांतिनाथजी	16 वीं शताब्दी
बिचगाँवा	श्री संभवनाथजी	नव निर्मित सन् 1978
खण्डिप	श्री नेमिनाथजी	18 वीं शताब्दी
बालघाट	श्री नेमिनाथजी	18 वीं शताब्दी
पटौंदा	श्री महावीर स्वामी	नव निर्मित सन् 1976
गंगापुर (शहर)	श्री पार्श्वनाथ भगवान	नव निर्मित सन् 1984
नसिया कालोनी	श्री महावीर स्वामी	नव निर्मित सन् 1994
परबनी	श्री महावीर स्वामी	जीर्णोद्धार 1978 में
मौजपुर (अलवर)	श्री शांतिनाथजी	17 वीं शताब्दी
हरषाना	श्री संभवनाथजी	16 वीं शताब्दी
महुआ	श्री नेमनाथजी	18 वीं शताब्दी
अलवर (मुंशी बाजार)	श्री चन्द्रप्रभुजी	18 वीं शताब्दी
बयाना	श्री महावीर स्वामीजी	18 वीं शताब्दी
नागाँव	श्री ऋषभनाथजी	300 वर्ष प्राचीन मंदिर
अलावडा	श्री चन्द्रप्रभुजी	300 वर्ष प्राचीन मंदिर
भनोखर	श्री महावीर स्वामीजी	300 वर्ष प्राचीन मंदिर
रसीद्पुर	श्री चन्द्रप्रभुजी	400 वर्ष प्राचीन मंदिर
आगरा (घूलियाँ गंज)	श्री चन्द्रप्रभुजी	250 वर्ष प्राचीन मंदिर
सिकन्दरा	श्री महावीर स्वामीजी	300 वर्ष प्राचीन मंदिर
जैन नगर फिरोजाबाद	श्री महावीर स्वामीजी	सेठ छदामी लाल द्वारा निर्मित मंदिर (सन् 1962)

स्थान	मूल नायक प्रतिमा	निर्माण समय
छोटी छोटी फिरोजाबाद	श्री महावीरस्वामी	1750 के लगभग निर्मित
अजमेर (पाल बीचला)	श्री पार्श्वनाथ स्वामी	नव निर्मित मंदिर
अजमेर (केसर गंज)	श्री महावीर स्वामी	सन् 1925 के लगभग निर्मित
पाली	श्री ऋषभदेवनाथजी	बहुत प्राचीन मंदिर है तथा अब भी पल्लीवालों का मंदिर कहलाता है।
चांदन गाँव (श्री महावीरजी)	श्री महावीर स्वामी	जोधराजजी द्वारा बनाया गया मंदिर
भरतपुर शहर	श्री मुनिसुव्रतस्वामी	16 वीं शताब्दी
आगरा (ज्योति नगर)	श्री महावीर स्वामी	सन् 1990
आगरा (जैन गली, शाहगंज)	श्री पार्श्वनाथ	सन् 1960
कठवारी (आगरा)	श्री महावीर स्वामी	18 वीं शताब्दी
मिढ़ाकुर	श्री शांतिनाथ जी	18 वीं शताब्दी
अछनेरा	श्री महावीर स्वामी	नव निर्मित
मुरैना (म.प्र.)	श्री पार्श्वनाथजी	18 वीं शताब्दी
बामोर (म.प्र.)	श्री पार्श्वनाथजी	नव निर्मित
जोरा (म.प्र.)	श्री शांतिनाथजी	20 वीं शताब्दी

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित हिन्दी पुस्तक

	मूल्य
1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-
2. जैनत्व जागरण	200/-
3. जागे रे जैन संघ	30/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-
6. दिगंबर संप्रदाय एक अध्ययन	100/-
7. श्रीमहाकालिका कल्प एवं प्राचिन तीर्थ पावागढ़	100/-
8. अकबर प्रतिबोधक कौन ?	50/-
9. इतिहास गवाह है।	30/-
10. तपागच्छ इतिहास	100/-
11. सांच को आंच नहीं	100/-
12. आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13. जगजयवंत जीरावला	100/-
14. द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15. प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	50/-
16. इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	200/-
17. जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18. जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कर	50/-
19. प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20. जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21. जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22. अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

૧. મંત્રં સંસાર સારં	૨૦૦/-
૨. જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ	૩૦/-
૩. જાગે રે જૈન સંઘ	૨૦/-
૪. ઘંટનાદ	
૫. શ્રુત રત્નાકર (પૂ.ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. નું જીવન ચરિત્ર)	

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1. Lights	300/-
2. History of Jainism	300/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित/संपादित

	मूल्य
1. समत्वयोग (1996)	100/-
2. अनेकांतवाद (1999)	100/-
3. अणुपेहा (2001)	100/-
4. आणंदा (1999)	50/-
5. सदयवत्स कथानकम् (1999)	50/-
6. संप्रतिनृप चरित्रम् (1999)	50/-
7. दान एक अमृतमयी परंपरा (2012)	310/-
8. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप (1992)	100/-
9. दोहा पाहुडं (1999)	50/-
10. बाराक्खर कवक (1997)	50/-
11. प्रभुवीर का अंतिम संदेश (2000)	50/-
12. दोहाणुपेहा (संपादित-1998)	50/-
13. तरंगवती (1999)	50/-
14. हरिवंशपुराण	-
૧૫. નંદાવર્ત નું નંદનવન (૨૦૦૩)	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित

1. संवेदन की सरगम (2007) 50/-
2. संवेदन की सुवास (2008) 50/-
3. संवेदन की झलक (2008) 50/-
4. संवेदन की मस्ती (2007) 50/-
5. आत्मकथाएँ (संपादित) (2013) 50/-
6. शासन सम्राट(जीवन परिचय) 1999 50/-
7. विद्युत सजीव या निर्जीव (1999) 50/-

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखीत साहित्य

1.	मूर्तिपूजा का प्राचिन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लोंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	100/-
5.	बत्तीस आगम सूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्धि	50/-
6.	जैन धर्म में प्रभु-दर्शन-पूजन की मान्यता थी ?	50/-

अन्य साहित्य

1.	नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ.वल्लभसूरि म.सा.)	200/-
2.	मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित)	50/-
3.	लोंकागच्छ और स्थानकवासी (पू. कल्याण वि. म.)	100/-
4.	हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन)	30/-
5.	सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा.	20/-
6.	क्या जिनपूजा करना पाप है ? (पू.आ. अभयशेखरसूरिजी म.सा.)	30/-
7.	जैन शासन की आदर्श घटनाएँ (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.)	30/-
8.	उन्मार्ग छोडिए, सन्मार्ग भजीए (पं. शांतिलालजी जैन)	30/-
9.	जड़पूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी)	30/-
10.	पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.)	30/-
11.	क्या धर्म में हिंसा दोषाव्ह है ?	30/-
12.	तत्त्व निश्चय (कुए की गुंजार पुस्तक की समीक्षा)	--
13.	चलो कदम उठाएँ (सं. पू.मु. ऋषभरत्न वि.म.सा.)	50/-
14.	जिनमन्दिर ध्वजारोहण विधि-सं. जे.के. संघवी/सोहनलालजी सुराणा	

चल रहे कार्य

1. जैन इतिहास (श्री आदिनाथ परमात्मा से अभी तक)
2. सूरि मंत्र कल्प

।। जैन शासन–जैनागम जयकारा।।

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचिन जैन तीर्थ – अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. जैन नगरी तारातंबोल – एक रहस्य
8. Research on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ– नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि– एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारकों के प्राचिन अंश
17. યુગ યુગમાં મળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्रं संसार सारं (भाग –2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्रं संसार सारं (भाग –3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्रं संसार सारं (भाग –4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्रं संसार सारं (भाग –5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञात जैन तीर्थ
23. प्राचिन जैन स्मारकों का रहस्य
24. जैन दर्शन – अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह

27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर
28. जैनत्व जागरण – 3
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी–मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति – एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
૩૩. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૧, ગુજરાતી)
૩૪. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૨, ગુજરાતી)
૩૫. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૩, ગુજરાતી)
૩૬. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૪, ગુજરાતી)
૩૭. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૫, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड़ देश में जैन धर्म
40. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રી ને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)
43. जैन श्राविका शान्तला
44. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવીર આ. ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
45. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવન દર્શન)
46. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
47. श्री भद्रबाहु संहिता – (आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निमित ज्ञान प्रकरण)
48. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પ. પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
49. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા...

*** नोंध – सभी ग्रंथों का कार्य पूर्ण हो चुका है। सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होंगे।**